

## कृषि का वाणिज्यीकरण

### कृषि का वाणिज्यीकरण औपनिवेशिक

अर्थ व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण परिणाम था। औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था के कारण भारत में कृषि उत्पादन के रूप में तथा चारित्र्य में मूलभूत परिवर्तन हुए। किसान अब केवल ग्रामीण उपभोग के लिए उत्पादन नहीं करता था बल्कि वह बाजार में विक्रय हेतु उत्पादन करता था। आवागमन के साधनों में विकास के कारण किसानों को बाजार की सुविधा उपलब्ध हुई तथा वे मुख्यतः बाजार की दृष्टि से पैदावार करने लगे। इन परिवर्तनों के कारण कृषि उत्पादन में जो नया तत्व उत्पन्न हुआ उसे कृषि का वाणिज्यीकरण कहा गया है।

कृषि के वाणिज्यीकरण में सहायक तत्व - कृषि की इस व्यवस्थामें रबड़ा पदार्थों की जगह एक विशेष प्रकार की फसल उगाई जानी लगी, जैसे - रबड़, पटसन, ईख, तेलहन, चाय, कॉफी, नील आदि ये सारी वस्तुएँ थीं, जिनकी रबपात कच्चे पदार्थों के रूप में इंग्लैण्ड में की जाती थी। इंग्लैण्ड में औद्योगीकरण के साथ इन कच्चे पदार्थों की जरूरत बढ़ती गई। भारत में अंग्रेजों ने ऐसी नीतियाँ अपनाई, जिनकी फलस्वरूप अधिक से अधिक इसमें में ब्रिटिश उद्योगों की जरूरत वाले कच्चे माल की खेती होने लगी। इसलिए यह कहा जा सकता है कि भारत में कृषि का वाणिज्यीकरण इंग्लैण्ड के औद्योगीकरण के आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए की गई। इसके अतिरिक्त कृषि के वाणिज्यीकरण में भारतीय किसानों ने अधिक आग्रह की आज्ञा की। औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत किसानों को अधिक पैसे की आवश्यकता थी। श्रम राजस्व की राशि दिन-प्रति-दिन बढ़ रही थी और फिर लगान की अदायगी के लिए तथा महाजनों के ऋण को चुकाने के लिए किसानों को अधिक से अधिक रोकड़ पैसे खाने की जरूरत हुई। भारतीय किसान महाजनों के चंगुल में अकल्पित जकड़ता गया और उसे बाजार के लिए उत्पादन करने को



लाया होना पड़ा।

आवागमन के साधनों में सुधार तथा वृद्धि ने कृषि के वाणिज्यीकरण को प्रभावित किया। रेल्वे की आने वाली औद्योगिक फसलों के क्षेत्र विस्तार और विभिन्न इलाकों में लौरी आने वाली फसलों के विविधीकरण में परिवर्तन स्पष्ट है। निर्मित व्यापार तन्त्र और साथ ही देश का आन्तरिक व्यापार भी। कर निर्धारण की नई प्रथा के कारण अब गाँव में मुद्रा अर्थतन्त्र का प्रचलन हुआ तो वह वाणिज्यीकरण की दिशा में पहला कदम था। लेकिन इसका प्रभाव तब तक व्यापक नहीं हो सका जब तक आवागमन के साधनों का विकास नहीं हुआ था। इसलिए भारत में 1853-54 ई० में रेलवे की शुरुआत तथा 1869 ई० में र्वेज नहर के खुल जाने से कृषि के वाणिज्यीकरण में और भी वृद्धि हुई।

कृषि का वाणिज्यीकरण इन इलाकों में अधिक तेजी से हुआ जहाँ फसल अधिकतर निर्यात के लिए उगाई जाती थी, उदाहरण के लिए - बंगाल के पटसन तथा बनारस देश एवं गुजरात के रबी वाले इलाके में। निर्यात व्यापार में लगे हुए लोगों के क्रिया कलापों के चलते र्वेले की उपज को कम समय में बंदरगाह पहुंचाने के लिए बाजार संगठन का जन्म हुआ। फसल का बहुत बड़ा भाग के दर के बदले बाजार में आ गया। कपास और पटसन के अलावे ज्वार, बाजरा, तेलहन आदि चीजों का बहुत बड़ा भाग बाजार में आ गया।

सरकारी कर निर्धारण और महाजन के सूद की अदायगी के कारण ऐसी स्थिति उत्पन्न हुई कि फसल को काटने के तुरंत बाद ही कर देना पड़ता था। इसलिए किसानों की अपनी फसल का बहुत बड़ा भाग जल्द से जल्द बेच देना पड़ता था। इसके चलते उसे जो भी मूल्य प्राप्त होता था, उसी



पर फसल की बच देता था। यदि वह खर महीने के बाद फसल की बचता तो उसे अधिक लाभ होता, किन्तु सरकारी नीति के चलते तथा महाजनों के दबाव के चलते ऐसा संभव नहीं होता था। परिणामस्वरूप गरीब किसानों के पास खर महीने बाद जीवन निर्वाह के लिए बहुत कुछ नहीं बचता था।

कृषि के वाणिज्यीकरण का भारतीय किसानों पर बुरा प्रभाव पड़ा और यह कहा जाता है कि यह कृषि पद्धति भारतीय किसानों के लिए अनुकूल नहीं थी। इसके कई कारण हैं— इस पद्धति में पूँजी या लागत की अधिक आवश्यकता होती थी। भारतीय किसान जो पहले से ही गरीब थे इस पूँजी को महाजन तथा सूदरतोरों से प्राप्त करते थे। सूद का दर इतना ऊँचा होता था जिसके चलते किसानों पर दोहरा आर्थिक बोझ बढ़ता गया, एक राज्य का और दूसरा महाजन का। सरकार की ओर से ग्रामीण इलाकों में इस पूँजी को प्राप्त करने के लिए कोई संस्था नहीं खोले गये थे। फलस्वरूप ग्रामीण अर्थतंत्र से महाजनों द्वारा किसानों का शोषण बढ़ता गया।

इस कृषि पद्धति में विज्ञान तथा तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता थी। भारतीय किसान अज्ञात थे और वैज्ञानिक परिवर्तनों से सम्पूर्ण रूप से अनभिज्ञ थे। ब्रिटिश सरकार ने प्रारंभ से ही वैज्ञानिक कृषि के विकास के लिए कोई कदम नहीं उठाया। फलस्वरूप इंग्लैंड में वैज्ञानिक उपकरणों के प्रयोग के चलते औद्योगिक क्रांति से पूर्व कृषि क्रांति हुई थी। जबकि भारतीय परिस्थिति में यह संभव नहीं हुई।

वाणिज्यिक फसलों की उगाई में पानी की अधिक आवश्यकता होती थी। यह तो सर्वमान्य है कि भारतीय कृषि प्राकृतिक साधनों पर ही आश्रित थी और ब्रिटिश



सरकार ने जल साधनों का पर्याप्त विकास नहीं किया। फलस्वरूप सिर्फ नहर वाले क्षेत्र में ही इस तरह की खेती संभव थी, परन्तु अंग्रेजों ने अधिक से अधिक भूमि में खाद्यान्नों की जगह व्यावसायिक फसलों की उगाता प्रारंभ किया।

इस पद्धति में इन तत्वों के चलते बहुत अधिक अनिश्चितता थी और भारतीय किसान इसे सहने के काबिल नहीं थे। यह सच है कि कुछ इलाकों में किसानों की प्रारंभिक वर्षों में कृषि के ताण्ड्यीकरण से अच्छा लाभ हुआ। परन्तु यह लाभ बहुत ही क्षणिक साबित हुई और किसान भूखों मरने लगे। न तो किसानों के पास पैसे थे और न आनाज।

इस पद्धति से लाभ तथा हानि — अपनी निजी और गाँव की सामूहिक जरूरतों को पूरा करने के बाद भारतीय किसान अब शेष विश्व के लिए फसल उगाने लगे। कृषि उत्पादन की दिशा में इस परिवर्तन के फलस्वरूप न केवल फसलों का ताण्ड्यीकरण और विविधीकरण हुआ, बल्कि भारतीय गाँवों की कृषि और उद्योगों की प्राचीन एकता भी भंग हुई। कृषि के ताण्ड्यीकरण एवं ब्रिटेन के मशीनों से बनी सस्ती वस्तुओं के व्यापार का प्रभाव भारतीय गाँवों पर पड़ा। जैसा कि ए० आर० देशाई कहते हैं कि भारतीय गाँवों के आत्मनिर्भर और संतुलित अर्थतंत्र पर इसका बुरा प्रभाव पड़ा। किसानों के पास पैसे की कमी हो गई और अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उसे कर्ज लेकर मशीन द्वारा बनी सस्ती वस्तुओं को खरीदना पड़ता था। आत्मनिर्भर ग्रामीण अर्थतंत्र के दो मुख्य आधार कृषि और ग्राम उद्योग के संतुलन के नष्ट हो जाने से आत्मनिर्भर गाँव के अस्तित्व का आर्थिक आधार कमजोर होता गया। परिणामस्वरूप किसानों के बीच गरीबी बढ़ती गयी और बेकारी की समस्या भी बढ़ी।



कृषि के वाणिज्यीकरण के समर्थकों का कहना है कि इस प्रकार की व्यवस्था ने परम्परागत ग्रामीण अर्थतंत्र को आधुनिक बनाया। किसानों को शहर की ओर जाना पड़ा, जिससे सामाजिक निष्क्रियता समाप्त हुई। इस प्रणाली में मार्क्सवादी इतिहासकारों का विचार है कि यह सच है कि कृषि के वाणिज्यीकरण ने गांव की आत्म-निर्भरता और लोगों के बीच सीमित सहयोग का विनाश किया, परन्तु इस विनाश के चलते ही देश का जो पूंजीवादी एकीकरण हुआ, उससे अर्थतंत्र एवं सामाजिक परिवर्तन के उच्चस्तरीय रूपों के आगमन के लिए मार्ग प्रशस्त हुआ। देश के एकीकरण के पहले भारतीय जन जीवन अनेकानेक गांवों में बिखरा हुआ था और इन गांवों में परस्पर सामाजिक या आर्थिक विनिमय नहीं के बराबर था। पूंजीवादी एकीकरण ने भारतीय राष्ट्र के भौतिक उद्भव का आधार तैयार किया। इसलिए ऐसे इतिहासकारों का कहना है कि कृषि का वाणिज्यीकरण भारतीय किसानों के लिए दुखद भले हो परन्तु यह भारतीयों के आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक एकीकरण के लिए आवश्यक था। यह नहीं भूलना चाहिए कि इस व्यवस्था ने गांव की सामाजिक निष्क्रियता और लैटेंट ऊद्रता को समाप्त किया और आधुनिकीकरण के आगमन में सहायता प्रदान किया।

साथ ही साथ, इस पद्धति के चलते किसानों में राजनीतिक जागरूकता का प्रादुर्भाव हुआ और वे शोषण के विरुद्ध लड़ने के लिए प्रेरित हुए। यही कारण है कि 19वीं सदी के दूसरे भाग में कई किसान विद्रोह हुए और ब्रिटिश सरकार ने काइतकारों के लिए कई अधिनियम पारित किए। इसी समय संथासों ने विद्रोह किया और 1859 तथा 1885 में बंगाल काइतकारी अधिनियम पास किया गया। 1873-74 में दक्षिण के किसानों ने साहूकारों के विरुद्ध विद्रोह किया तो 1879 में दक्कन काइतकारी

सहायता अधिनियम पास किया गया। १९३० की शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में पंजाब में भी किसानों ने विद्रोह किया। इस प्रकार आर्थिक असन्तोष ने किसानों में राजनीतिक चेतना बढ़ाया और ने शोषणकारी तत्त्व तथा सरकार के विरुद्ध संगठित रूप से विद्रोह करने लगे।